मैक्डोनल– देवताओं की प्रशंसा करने वाला। पीटर्सन– गायक स्तोता।

(v) शशमानम् – शश् धातु + शानच् प्रत्यय, पुल्लिंग द्वितीया एकवचन। ग्रासमेन ने इसे शम् धातु से कानच् प्रत्ययान्त रूप माना है।

(vi) राधः – राध् (सिद्ध करना, प्रसन्न करना) से यह शब्द निष्पन्न है। सायण ने पुरोडाशादि अन्न अर्थ किया है। मैक्डोनल ने 'उपहार' अर्थ किया है।

(vii) वर्धनम् – वृध् धातु + णिच् + ल्युट्, नपुंसक लिंग प्रथमा एकवचन।

यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद्

वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः।

वयं ते इन्द्र विश्वह प्रियासः

सुवीरासो विदथमा वदेम ।। 15।।

अन्वय – दुध्रः यः पचते वाजम् चित् आ दर्दर्षि, सः किल सत्यः असि। इन्द्र। सुवीरासः ते प्रियासः वयम् विश्वह विदथम् आवदेम।

शब्दार्थ – दुध्रः – घोर। सुन्वते– सोमरस निकालने वाले के लिए। पचते– पकाने वाले के लिए। वाजम्– अन्न या बल। आ दर्दर्षि– देते हो। सुवीरासः – उत्तम वीर संतानों वाले। विश्वह – सदा ही। विदथम्– प्रार्थना के वाक्य। आवदेम् – बोलते रहें।

संदर्भ – प्रस्तुत मंत्र ऋग्वेद के दूसरे मण्डल के बारहवें सूक्त 'इन्द्र सूक्त' का अन्तिम मंत्र है। इसके देवता इन्द्र, ऋषि गृत्समद तथा छन्द त्रिष्टुप् है। इस मन्त्र में ऋषि गृत्समद ने इन्द्रदेव से अन्न एवं धन–धान्यादि की कामना की है तथा यह विश्वास दिलाने का प्रयास किया है कि वह सदैव सपरिवार इन्द्र को स्तवन करता रहेगा।

अनुवाद– ऋषि गृत्समद इन्द्र देव की महिमा का वर्णन करते हुए प्रार्थना करते है कि घोर (दुर्धर) जो सोमरस निकालने वाले के लिए, हवि पकाने वाले के लिए अन्न या बल प्रदान करता है, वह (तुम) निः संदेह ही यथार्थ हो अर्थात् इन्द्र नाम से सिद्ध हो। हे इन्द्र! उत्तम वीर संतानों वाले तुम्हारे प्रिय हम सदैव प्रार्थना के वाक्य बोलते रहें अर्थात् सदैव तुम्हारी स्तुति करते रहें।

टिप्पणी–

(i) दुध्रः –दुर् उपसर्ग + धृ (धारणे) धातु + क प्रत्यय।

(ii) सुन्वते– सु धातु + लट् स्थानीय, शतृ प्रत्यय, तस्मै।

(iii) पचते – पच् धातु + लट् स्थानीय, शतृ, तस्मै।

(iv) प्रियासः – यह लौकिक 'प्रियाः' का वैदिक रूप है।

(v) विश्वह – विश्वानि अहानि अर्थ में छान्दस् रूप।

1.5 हिरण्यगर्भ सूक्त (10.121)

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे

भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां

कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। 1।।

अन्वय – हिरण्यगर्भः अग्रे समवर्तत, जातः भूतस्य एकः पतिः आसीत्, स इमां पृथिवीं उत द्यां दाधार, कस्मै

देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – हिरण्यगर्भः – स्वर्णमय अंडे का गर्भभूत प्रजापति। अग्रे– सृष्टि की रचना से पहले। समवर्तत– उत्पन्न हुआ। जातः – उत्पन्न होते ही। भूतस्य– संसार का। पतिः ईश्वर। आसीत्– हो गया। सः – संसार का स्वामी बने हुए उसने। इमां– समुद्र और वनों के सहित इस धान्यशालिनी पृथ्वी को। उत– और। द्याम्– आकाश को। दाधार– धारण किया है। कस्मै देवाय– उस प्रजापति नामक देवता के लिए। हविषा– हविष्यान्न द्वारा। विधेम– (हम) प्रस्तुत करते हैं अथवा प्रसन्न करते हैं।

संदर्भ – प्रस्तुत मंत्र 'प्रजापति सूक्तम्' से लिया गया है। यह ऋग्वेद के दशम मण्डल का 121 वाँ सूक्त है। इसके देवता 'कः' अर्थात् प्रजापति, ऋषि हिरण्यगर्भ तथा छन्द त्रिष्टुप् है। इसमें सृष्टि की रचना की पूर्व की स्थिति का वर्णन करते हुए, प्रजापति के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है। इसमें मन्त्रद्रष्टा ऋषि कहता है कि –

अनुवाद– हिरण्यगर्भ प्रजापति सबसे पूर्व उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते ही वह सारी सृष्टि का एकमात्र स्वामी बना। उसने इस पृथ्वी और आकाश को धारण कर लिया। हम ऐसे प्रजापति देव को हविष्यान्न द्वारा प्रसन्न करते हैं।

टिप्पणी–

(i) इस सूक्त के अन्तिम मंत्र को छोड़कर अन्य मंत्रों का चौथा चरण एक जैसा ही है– 'कस्मै देवाय हविषा विधेम'। इसमें विद्यमान 'कस्मै' शब्द के अर्थ के विषय में पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों में मतभेद है। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि संस्कृत में 'कः' शब्द प्रश्नवाचक है और इसका अर्थ 'कौन' होता है, अतः इस पंक्ति का अर्थ होगा 'हम किस देवता को हविष्यान्न द्वारा प्रसन्न करें?'

इसके विपरीत भारतीय परम्परा भिन्न प्रकार की है। सायणाचार्य ने 'कः' प्रजापति हिरण्यगर्भ आदि शब्दों को एक–दूसरे का पर्यायवाची शब्द माना है। मन्त्रों के भावों को देखने पर 'कः' का अर्थ प्रजापति करना ही समुचित जान पड़ता है।

(ii) इस मंत्र में विश्व की शाश्वत समस्याओं में से एक को समझाने का प्रयास किया गया है। प्रश्न यह उठता है कि प्रलय के पश्चात् जब पृथ्वी पर किसी भी प्राणी की सत्ता नहीं थी, तब सबसे पहले कौन पैदा हुआ? यह एक कौतूहलपूर्ण प्रश्न है, जिसकी जिज्ञासा सदा बनी रहती है क्योंकि यदि उत्तर दिया जाये कि वट का वृक्ष सबसे पहले हुआ, तो प्रश्न उठता है कि बिना बीज के वह वट का पेड़ कैसे बन गया? इसी प्रकार यदि यह कहा जाए कि वट का बीज पहले आया तो भी यह प्रश्न उपस्थित होता है कि बिना वट के वृक्ष के उस बीज की सत्ता कहाँ से आई? ऐसा ही एक दूसरा प्रश्न है कि मुर्गी बनी या अण्डा? इस मंत्र में यह माना गया है कि समस्त प्राणियों की उत्पत्ति से पूर्व हिरण्मय अण्ड से गर्भभूत प्रजापति पैदा हुए। आज के वैज्ञानिकों का चिन्तन भी इस भित्ति पर अवस्थित है। ऐसा माना जाता है कि इस ब्रह्मांड में अकेला सूर्य ही चक्कर लगाता था, अचानक उसमें से एक ग्रह टूटकर अलग हुआ और वह भी उसके चारों और घूमने लगा। यह ग्रह हमारी पृथ्वी थी। सूर्य आग का गोला अर्थात् हिरण्मय (स्वर्ण के रंग के समान) अण्डाकार है। इससे निकली पृथ्वी ही प्रजापति है, जिसने सबसे पहले जन्म ग्रहण किया है। यही, प्रजापति समस्त उत्पन्न होने वाले पदार्थों का स्वामी बना और इसी ने पृथ्वी तथा आकाश को धारण किया। ऐसा प्रजापति को यहाँ हविष्यान्न से प्रसन्न करने का संकेत है।

(iii) समवर्तत– सम् + वृत् + लङ् लकार प्रथम पुरुष एकवचन। सायण ने इसका अर्थ 'उत्पन्न हुआ', उव्वट ने सर्वप्रथम शरीर धारण किया', महीधर ने 'स्वयं शरीरधारी हुआ' तथा पीटर्सन ने 'उत्पन्न हुआ, सत्ता में आया' किया है।

(iv) दाधार – धृ (धारण करना) धातु + लिट् + प्रथम पुरुष एकवच।

(v) विधेम – विध् धातु + विधिलिङ्ग + उत्तम पुरुष + एकवचन। यह वैदिक धातु है तथा 'सेवा करना', 'पूजा करना' आदि अर्थो में प्रयुक्त होती है।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्वे

उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।

यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः

कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। 2।।

अन्वय – य आत्मदा बलदा यस्य प्रशिषं विश्वे उपासते, यस्य देवाः, यस्य अमृतं, यस्य मृत्युः छाया, कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – आत्मदा– आत्माओं का प्रवर्तक। बलदा– बलप्रदायक। यस्य– जिस प्रजापति के। प्रशिषं– शासन में। विश्वे– सभी चराचर लोकों के प्राणी। उपासते– उपासना करते हैं। देवाः – अमर लोग। अमृतं– अमरता या सुधा। मृत्यु– मरण अथवा यमराज। छाया– प्रतिमूर्ति।

संदर्भ – यह मन्त्र 'प्रजापति सूक्त' का है, जो ऋग्वेद के दशम मण्डल का 121 वाँ सूक्त है। इसके देवता 'कः' अर्थात् प्रजापति, ऋषि हिरण्यगर्भ तथा छन्द त्रिष्टुप् है। इसमें प्रजापति का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

अनुवाद– जो प्रजापति आत्मा का और बल का देने वाला है, जिसकी आज्ञा को समस्त संसार और देवता मानते हैं, अमरता और मृत्यु जिसकी छाया है। हम उस प्रजापति देव को हविष्यान्न द्वारा प्रसन्न करते हैं।

टिप्पणी–

(i) इस मंत्र में प्रजापति को आत्माओं का प्रवर्तक माना गया है। भाव यह है कि परमात्मा से ही सभी आत्माएँ उत्पन्न हुई है। इस प्रकार आगे चलकर विकसित होने वाले दार्शनिक विचारों का मूल यहाँ मिल जाता है।

(ii) प्रजापति इतना शक्तिशाली है कि समस्त प्राणी मात्र तथा देवता इन्हीं के नियन्त्रण में रहते हैं। यहाँ तक कि अमरता और मृत्यु भी उसकी प्रतिभूति है। प्रजापति से अधिक सामर्थ्यवान् और कोई नहीं है।

(iii) 'कस्मै देवाय' के विवेचन के लिए इस सूक्त के प्रथम मंत्र की प्रथम टिप्पणी का अवलोकन करें।

(iv) बलदाः – बल उपपद + दा धातु + विच् प्रत्यय। सायण– बलदाता या बलशोधक, सामर्थ्यप्रद। पीटर्सन–बल को देने वाला, शक्तिदायी।

(v) प्रशिषम्– प्र + शास् + क्विप्। द्वितीया विभक्ति एकवचन का रूप।

(vi) उपासते – उप उपसर्ग + आस् धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

(vii) यस्यौच्छायामृतं यस्य मृत्युः – अमृतम्– (1) अमृतत्व (2) अमृतः, सुधा। उव्वट, महीधर– जिसका आश्रय अमृत रूप मोक्ष हेतु है तथा जिसकी अकृपा आवागमन रूप मृत्यु है। पीटर्सन– जिसकी छाया अमरता एवं मृत्यु है।

यः प्राणतो निमिषतो महि

त्वैक इन्द्राजा जगतो बभूव।

य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः

कस्मै देवाय हविषा विधेम।। 3।।

अन्वय – यः प्राणतः निमिषतः जगतः महित्वा एकः इत् राजा बभूव। यः अस्य द्विपदः चतुष्पद ईशे। कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – प्राणतः – प्राणों को धारण करने वालों का। निमिषतः – पलक झपकने वालों का। जगतः – संसार से। महित्वा– महिमा से। एक– अद्वितीय। इत्– ही। राजा– प्रभु। बभूव– हो गया। अस्य– इस दृश्यमान जगत् के। द्विपदः – दो पैरों का आश्रय लेने वाले मनुष्य आदि पर। चतुष्पदः – गौ आदि पशुओं पर। ईशे– शासन करता है।

संदर्भ – यह मन्त्र 'हिरण्यगर्भ सूक्त' से लिया गया है जो कि ऋग्वेद के दशम मण्डल का 121 वाँ सूक्त है। इस मंत्र में हिरण्यगर्भ ऋषि ने प्रजापति देव के महत्त्वपूर्ण कार्यों का वर्णन किया है–

अनुवाद– जो प्रजापति श्वास लेते हुए तथा पलक झपकते हुए प्राणियों वाले संसार का अपने महत्त्व से अकेले ही स्वामी हो गया, जो इस मनुष्य व पक्षी आदि दो पैरों वाले, पशु आदि चार पैरों वाले प्राणियों पर शासन करता है। ऐसे प्रजापति देव को हम हवि द्वारा प्रसन्न करते हैं।

टिप्पणी–

(i) यहाँ पर प्रजापति के प्रभुत्व का उल्लेख किया गया है। इसके नियन्त्रण में वे सभी हैं, जो श्वास लेते हैं या नेत्रों से देखते हैं। इसी प्रकार दो पैरों वाले तथा चार पैरों वाले भी इसी प्रजापति के नियन्त्रण में रहते हैं। अपने महत्त्व से अकेला प्रजापति ही इसी पूरी पृथ्वी का स्वामी हो गया, जिस प्रकार कि इन्द्र ने जन्म लेते ही अपनी शक्ति से देवताओं में प्रमुख पद को प्राप्त कर लिया था।

(ii) प्राणतः – प्र + अन् (प्राणने) + शतृ प्रत्यय, षष्ठी विभक्ति एकवचन का रूप।

(iii) निमिषतः – नि + मिष् (स्फुरित होना, चलना) + शतृ प्रत्यय, षष्ठी विभक्ति एकवचन।

(iv) महित्वा – महत् + त्व – महित्व। तृतीया का एकवचन वैदिक रूप।

(v) द्विपदः – द्वौ पादौ यस्य तत्, द्विपात्, तस्य। षष्ठी एकवचन।

(vi) चतुष्पदः – चत्वारः पादाः अस्य तत् चतुष्पात्, तस्य।

(vii) ईशे– ईश् धातु लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन, वैदिक रूप।

(viii) प्रस्तुत मन्त्र में त्रिष्टुप् छन्द है।

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा
यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू
कस्मै देवाय हविषा विधेम।। 4।।

अन्वय – इमे हिमवन्तः यस्य महित्वा, रसया सह समुद्रं यस्य आहुः, यस्य इमाः प्रदिशः यस्य बाहू, कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – इमे– ये प्रसिद्ध। हिमवन्त– हिमालय पर्वत श्रेणियाँ। यस्य– जिस प्रजापति के। महित्वा– महिमा को। रसया सह– पृथ्वी के साथ या नदी समूह के साथ। समुद्रं– पयोधि। आहुः – कहते हैं। इमाः – ये चारों ओर वर्तमान। प्रदिशः – ईशान, वायव्य, नैऋत्य और आग्नेय आदि कोण। बाहू– भुजाओं के समान प्रधान पूर्व, पश्चिम, उत्तर ओर दक्षिण दिशाएँ।

संदर्भ – प्रस्तुत मन्त्र 'हिरण्यगर्भ सूक्त' से उद्धृत है, जो कि ऋग्वेद के दशम मण्डल का 121 वाँ सूक्त है। इस मंत्र में हिरण्यगर्भ ऋषि ने प्रजापति देव के महत्त्व का प्रतिपादन किया है।

अनुवाद– ये हिमालय पर्वत जिसके महत्त्व को बताते हैं, नदी या पृथ्वी के सहित समुद्र जैसी महिमा

को प्रकट करते हैं, जिसकी ये दिशाएँ और विदिशाएँ है। हम उस प्रजापति को हवि द्वारा प्रसन्न करते है।

टिप्पणी–

(i) इस मंत्र में हिमालय, समुद्र, पृथ्वी तथा समस्त दिशाएँ व उपदिशाएँ उस प्रजापति के गौरव को व्यक्त करने वाली हैं। 'रसा' शब्द का अर्थ नदी होता है, किन्तु संस्कृत में पृथ्वी का सूचक भी माना जाने लगा था।

(ii) हिमवन्तः – हिमा अस्मिन् सन्तीति हिमवान् ते। हिम+मतुप्, प्रथमा एकवचन।

(iii) महित्वा – इसे सायण, उव्वट तथा महीधर द्वितीया का एकवचन स्वीकारते हैं तथा इसका अर्थ 'महत्त्व को, महिमा को' करते हैं। वस्तुतः यह तृतीया विभक्ति का रूप है।

(iv) रसया – रसः (जलम्) अस्याः वा अस्ति इति रसा (नदी), स्त्रीलिंग, तृतीया एकवचन का रूप है, 'रमा' के समान।

(v) आहुः – ब्रू धातु लट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन का वैकल्पिक रूप।

(vi) प्रदिशः – सायण– आग्नेय आदि कोण। उव्वट–महीधर–पूर्व आदि दिशाएँ। पीटर्सन – आकाश के क्षेत्र।

(vii) छन्द पूर्ति के लिए 'यस्येमे' को 'यस्य इमे' तथा 'यस्येमाः' को 'यस्म इमाः' पढ़ना चाहिये।

(viii) इस मंत्र का सार यह है कि सम्पूर्ण चराचर जगत् उस प्रजापति की महिमा का ही परिणाम है।

येन द्यौरुग्रा पृथ्वी च दृल्हा

येन स्वः स्तंभितं येन नाकः।

यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः

कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। 5।।

अन्वय – येन द्यौः उग्रा च पृथिवी दृल्हा, येनः स्वः स्तंभितम् येन नाकः, यः अन्तरिक्षे रजसः विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – येन– जिस प्रजापति के द्वारा। द्यौः – अन्तरिक्ष। उग्रा– उग्र रूप में वर्तमान। पृथिवी– भूमि। दृल्हा– स्थिरता को ले जाई गई। स्वः – स्वर्ग। स्तंभितम् – स्थिर बनाया। नाकः – सूर्य। अन्तरिक्षे– आकाश में। रजसः – जल का। विमानः – निर्माता।

संदर्भ – प्रस्तुत मंत्र ऋग्वेद के दशम मण्डल का 121 वाँ मंत्र है। इस मंत्र में हिरण्यगर्भ ऋषि ने विभिन्न लोकों के निर्माता के रूप में प्रजापति देव के महत्त्व की प्रशंसा की है–

अनुवाद– जिसके द्वारा आकाश और उग्र पृथ्वी दृढ़ बनाई गई। जिसने स्वर्ग को स्थिर बनाया तथा सूर्य को आकाश में स्थापित किया। जिसने आकाश में जल उत्पन्न किया। हम उस प्रजापति को हवि द्वारा प्रसन्न करते हैं।

टिप्पणी–

(i) इस मंत्र में पृथ्वी की उस अवस्था की ओर संकेत किया गया है, जबकि अत्यन्त गर्म होने के कारण उसके तल पर अनेक उथल–पुथल होती रहती थी, आकाश निरन्तर बादलों से घिरा रहता था एवं भीषण गर्जनाओं के कारण काँप उठता था। इसी प्रकार के भाव इन्द्र सूक्त में भी प्राप्त होते हैं–'यः पृथ्वीम् व्यथमानाम् अदृंहत्' स्वर्ग या अन्तरिक्ष लोक को भी पृथ्वी के ऊपर माना गया है। उसे भी स्थिर करने का श्रेय प्रजापति को ही प्राप्त हुआ है। आर्य ऋषियों ने प्रातःकाल पूर्व दिशा में सूर्य को उदय होते हुए देखा तथा यह भी देखा कि दिन भर सूर्य आकाश में रहता है, किन्तु वह नीचे

पृथ्वी पर गिरता नहीं है, उसे किसी ने मानो आकाश में कर दिया है, इसका भी कारण प्रजापति को स्वीकार किया गया है। आकाश में जल का निर्माण करने का उत्तरदायितव भी इसे ही प्रदान किया गया है। इस प्रकार विश्व में जितने भी महान् तथा महत्त्वपूर्ण कृत्य हैं, उन सबको सम्पन्न करने का श्रेय प्रजापति को दिया गया है।

(ii) प्रस्तुत मंत्र में प्रजापति की महिमा को व्यक्त करते हुए उसे ही सम्पूर्ण सृष्टि का जनक माना गया है।

(iii) उग्रा – उद् + गुरो उद्यमने + क (अ) + टाप्। सायण ने 'उग्रा' को पृथिवी का विशेषण मानकर 'उठी हुई या गहन' अर्थ किया है। उव्वट–महीधर ने 'उग्रा' को 'द्यौः' का विधेय ही माना है। इन्होनें इसका अर्थ 'वृष्टिदायिनी' किया है। पीटर्सन– इन्होनें 'उग्रा' को 'द्यौः' का विशेषण मानकर 'महान्' अर्थ किया है।

(iv) दृल्हा – यह 'दृढा' का वैदिक रूप है। दृह् + क्त + टाप्।

(v) स्वः नाकः – सायण ने 'स्वः' का अर्थ स्वर्ग तथा 'नाकः' का अर्थ 'आदित्य' किया है। प्रारम्भ में ये दोनों अलग–अलग लोक माने जाते थे। कालान्तर में दोनों स्वर्ग के पर्यायवाची बन गये हैं।

(vi) विमानः – वि उपसर्ग + मा धातु + ल्युट् प्रत्यय।

(vii) स्तंभितम् – स्तम्भ् धातु + क्त प्रत्यय, नपुंसक लिंग, प्रथमा, एकवचन।

(viii) प्रस्तुत मंत्र में त्रिष्टुप् छन्द है।

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने।

अभ्यैक्षेताम् मनसा रेजमाने।

यत्राधिसूर उदितो विभाति

कस्मै देवाय हविषा विधेम।। 6।।

अन्वय – रेजमाने क्रन्दसी अवसा तस्तभाने य मनसा अभि ऐक्षेताम्, यत्र अधिसूरः उदितः विभाति, कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – रेजमाने– प्रकाशमान। क्रन्दसी– द्यावा पृथ्वी पर। अवसा– रक्षा द्वारा। तस्तभाने– स्थिरता को प्राप्त होने पर। यः – जिस प्रजापति को। मनसा– अपनी बुद्धि से। अभि ऐक्षेताम्– देखा था। यत्र– जिस प्रजापति में। अधि– आधारभूत होने पर। सूरः – सूर्य। उदितः – उदय होता हुआ। विभाति – प्रकाशित या शोभित होता है।

संदर्भ – प्रस्तुत मंत्र 'प्रजापति सूक्त' से लिया गया है। यह ऋग्वेद के दशम मण्डल का 121 वाँ सूक्त है। इसके देवता कः (प्रजापति), ऋषि हिरण्यगर्भ तथा छन्द त्रिष्टुप् है। इस मंत्र में हिरण्यगर्भ ऋषि ने प्रजापति की महिमा का वर्णन किया है।

अनुवाद– प्रकाशमान आकाश और पृथ्वी, प्रजापति से प्राप्त की गई रक्षा द्वारा स्थिर होकर, जिस प्रजापति को अपने महत्त्व का कारण मानते हैं। जिसके सहारे पर सूर्य उदित होकर शोभा देता है, हम उस प्रजापति देव को हविष्यान्न द्वारा प्रसन्न करते हैं।

टिप्पणी–

(i) इस मंत्र में भी आकाश और पृथ्वी की रक्षा करने का श्रेय प्रजापति को प्रदान किया गया है तथा सूर्य द्वारा संसार को प्रकाशित करने का महत्त्व भी इसे ही समर्पित किया गया है। आकाश, पृथ्वी और सूर्य– इन तीनों को स्थिर करने का महत्त्व भी प्रजापति को ही प्राप्त है। इस प्रकार

प्रस्तुत मंत्र में प्रजापति का महत्त्व प्रदर्शित किया गया है।

(ii) क्रन्दसी – क्रन्द् + असुन्। स्त्रीलिंग, प्रथम विभक्ति। द्विवचन का रूप। तै सं.– प्रजापति के रोदन से उत्पन्न द्यु लोक ओर पृथिवी लोक। मैक्समूलर– 'क्रन्दसी' के स्थान पर 'रोदसी' पाठ होना चाहिए।

(iii) तस्तभाने– स्तंभ् + कानच + टाप् – तस्तभाना। प्रथम का द्विवचन।

(iv) रेजमाने – राज् + कानच् + टाप् – रेजमाना। प्रथम का द्विवचन। डॉ. गुप्त – इसे रेज् (चमकना) + शानच् का रूप मानना अधिक उपयुक्त है।

(v) अभ्यैक्षेताम् – अभि उपसर्ग + ईक्ष् धातु, लङ् लकार प्रथम पुरुष द्विवचन।

(vi) मनसा–सायण– बुद्धि से। सायण– 'मनसा' का अन्वय अभ्यैक्षेताम् से कर 'बुद्धि से समीक्षण किया' अर्थ करते हैं।

आपो ह यद् बृहतिर्विश्वमायन्

गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्।

ततो देवानां समवर्ततासुरेकः

कस्मै देवाय हविषा विधेम।। 7।।

अन्वय – बृहती अग्निम् जनयन्ती, गर्भम् दधानाः यत् आपः ह विश्वमायन् ततः देवानाम् एकः असुः समवर्तत, कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – बृहतीः – महान् ओर विस्तृत। अग्निम्– वैश्वानर अग्नि को। जनयन्ती उत्पन्न करती हुई। गर्भम्– हिरण्मय अंडे के गर्भभूत प्रजापति को। दधानाः – धारण करती हुई। यत्– जो। आपः – जल। ह– ही। विश्वम् – सम्पूर्ण जगत में। आयन– फैल गया। ततः – गर्भभूत प्रजापति से। देवानाम् – देवताओं तथा अन्य प्राणियों का। एकः अद्वितीय। असुः प्राणात्मक वायु। समवर्तन – उत्पन्न हुआ।

संदर्भ – प्रस्तुत मंत्र 'प्रजापति सूक्तम्' से लिया गया है। यह ऋग्वेद के दशम मण्डल का 121 वाँ सूक्त है। इसके देवता कः (प्रजापति), ऋषि हिरण्यगर्भ तथा छन्द त्रिष्टुप् है। इस मंत्र में बताया गया है कि सृष्टि के आदि में जल था, उसमें अग्नि तथा बाद में वायु के रूप में प्रजापति ने किस प्रकार अपना स्वरूप ग्रहण किया–

अनुवाद– विस्तृत जल राशि अग्नि को उत्पन्न करती हुई और हिरण्यगर्भ को धारण करती हुई सारे विश्व में फैल गई। उससे देवी और मानुषी सृष्टि में अद्वितीय प्राणवायु रूप में यह उत्पन्न हुआ। हम उस प्रजापति देव को हविष्यान्न द्वारा प्रसन्न करते हैं।

टिप्पणी–

(i) इस मंत्र में सृष्टि के आदि में किस प्रकार की स्थिति थी तथा उसके बाद उसमें किस–किस प्रकार का परिवर्तन आया, इन सबका विश्लेषण प्रजापति के संदर्भ में किया गया है।

(ii) प्रस्तुत मंत्र का सारांश यह है कि सृष्टि के आदिकाल में जब सर्वत्र विशाल जल राशि फैली हुई थी। उस समय भी हिरण्यगर्भ प्रजापति विद्यमान था। उस समय वह समस्त सृष्टि के प्राणभूत तत्व के रूप में विद्यमान था।

(iii) बृहतीः – यह 'बृहती' शब्द से प्रथमा विभक्ति का बहुवचन है। यह वैदिक रूप है। लोक में 'बृहत्यः' रूप बनेगा।

(iv) जनयन्तीः – जन् धातु + णिच् + शतृ + ङीप्, प्रथम बहुवचन वैदिक रूप। लौकिक संस्कृत में 'जनयन्त्यः' रूप बनता है।

(v) दधानाः – धा + शानच् + टापृ – दधाना, प्रथमा बहुवचन।

(vi) आयन् – 'इण गतौ' धातु लङ् लकार (स्त्रीलिंग) प्रथम पुरुष बहुवचन।

(vii) ततः – सायण– प्राणात्मक वायु। उव्वट–महीधर– संवत्सर तक जल में स्थित गर्भ से। पीटर्सन– तब (जब जल राशि विस्तृत हुई)।

(viii) असुः – सायण– प्राणात्मक वायु। उव्वट–महीधर– प्राणरूप आत्मा, लिंग शरीर रूप गर्भ। पीटर्सन– आत्मा।

(ix) समवर्तत – सम् + वृत् धातु + लङ् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन।

(x) इस मंत्र में छन्दोविधान की दृष्टि से 'एकः' पद अधिक है, अतएव अर्नाल्ड ने इसे 'अधिकाक्षर' ऋक् माना है। रॉथ का मत है कि यदि ऋक् को शुद्ध करने की दृष्टि से 'एकः' को निकाल दिया जाये तो भाव या अर्थ की कोई हानि नहीं है।

यश्चिदापो महिना पर्यपश्य

द्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्।

यो देवेष्वधिदेव एक आसीत्

कस्मै देवाय हविषा विधेम।। 8।।

अन्वय – यः चित् यज्ञं जनयन्ती, दक्षं दधानाः, आपः महिना पर्यपश्यत्। यः देवेषु एकः अधिदेवः आसीत्। कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – यः – जिस प्रजापति ने। चित्– एकाकी ही। यज्ञं– यज्ञात्मक कर्म को। जनयन्ती– उत्पन्न करती हुई। दक्षं– चातुर्य को या प्रजापति को। दधाना– धारण करती हुई। आपः – जल। महिना– महत्त्व से। पर्यपश्यत्– चारों ओर देखा। यः – जो प्रजापति। देवेषु– देवताओं के मध्य। अधिदेवः – सर्वोपरि विराजमान होता हुआ। आसीत्– था।

संदर्भ – प्रस्तुत मंत्र 'प्रजापति सूक्त' से लिया गया है। यह ऋग्वेद के दशम मंडल का 121 वाँ सूक्त है, जिसके देवता कः, ऋषि हिरण्यगर्भ एवं छन्द त्रिष्टुप् है। इसमें प्रजापति का महत्त्व बताया गया है–

अनुवाद– जिसने यज्ञ को उत्पन्न करने वाले, प्रजापति को धारण करने वाले जलों को अपने माहात्म्य से परिपूर्ण रूप में देखा, जो देवताओं का स्वयं अधीश्वर है। हम उस प्रजापति को हवि द्वारा प्रसन्न करते हैं।

टिप्पणी –

(i) इस मंत्र में प्रजापति के वैशिष्ट्य का वर्णन किया गया है।

(ii) दक्षम्–सायण – प्रपञ्च रूप से वृद्धि के निमित्त समुद्यत प्रजापति को। महीधर– कुशल प्रजापति को। पीटर्सन– शक्ति, बल।

(iii) यज्ञम्–सायण– यज्ञोपलक्षित विकास समूह। उव्वट– सृष्टि यज्ञ। पीटर्सन– यज्ञ।

(iv) जनयन्तीः – जन् धातु + णिच् + शतृ + ङीप्, द्वितीया बहुवचन।

(v) दधानाः – धा धातु + शानच्, स्त्रीलिंग द्वितीया विभक्ति बहुवचन।

(vi) आपः – यहाँ द्वितीया के स्थान पर प्रथमा का प्रयोग हुआ है। यह कर्म है। अतः द्वितीया अपेक्षित है।

मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या

यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान।

यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान

कस्मै देवाय हविषा विधेम।। 9।।

अन्वय – नः मा हिंसीत् यः पृथिव्याः जनिता, यः वा सत्यधर्मा दिवं जजान, सः चन्द्राः बृहतीः आपः जजान, कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – मा– नहीं। नः – हमको। हिंसीत्– मारे। यः – जो कि। पृथिव्याः – पृथ्वी का। जनिता– पैदा करने वाला। वा– अथवा। सत्याधर्मा– नियमों को धारण करते हुए। जजान– उत्पन्न किया है। दिवं– स्वर्ग को। यः च – और जिसने। चन्द्रा– आनन्ददायक। बृहती– महान्। आपः – जल राशि को। कस्मै देवाय– प्रजापति देव को।

संदर्भ – प्रस्तुत मंत्र 'प्रजापति सूक्त' से लिया गया है। यह ऋग्वेद के दसवें मण्डल का 121 वाँ सूक्त है जिसके देवा कः, ऋषि हिरण्यगर्भ एवं छन्द त्रिष्टुप् है। इस मंत्र में प्रजापति के महत्त्व को प्रदर्शित किया गया है–

अनुवाद– वह हिरण्यगर्भ प्रजापति हमारी हिंसा न करें जो पृथ्वी लोक को पैदा करने वाला है, सत्यधर्मा जिसने द्युलोक को उत्पन्न किया है, जिसने आनन्द प्रदान करने वाले महान जल राशि को उत्पन्न किया है कः नाम वाले प्रजापति को हम हवि द्वारा प्रसन्न करते है।

टिप्पणी–

(i) सत्यधर्मा – इस शब्द के विद्वानों ने अलग–अलग अर्थ किये है।
   (1) जगत् को धारण करने वाले रूप सत्य धर्म वाला।
   (2) सत्य का धारक
   (3) सत्य को धारण करने या कराने वाला और
   (4) सच्चा और विश्वस्त।

(ii) प्रजापति सृष्टि का रचयिता है, उसने तीनों लोकों का निर्माण किया। वह पृथ्वी लोक का निर्माता है, उसने द्युलोक को उत्पन्न किया तथा वही आनन्ददायिनी बहती जल राशि को उत्पन्न करने वाला है।

(iii) हिंसीत् – हिंस् धातु + लङ् + प्रथम पुरुष एकवचन।

(iv) जनिता – जन् धातु + णिच् + तृच् का पुल्लिंग प्रथमा एकवचन का वैदिक रूप।

(v) जजान – जन् धातु + णिच् + लिट् + प्रथम पुरुष एकवचन, 'जनयामास' का वैदिक रूप है।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा

जातानि परि ता बभूव।

यत्कामस्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु

वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।। 10।।

अन्वय – प्रजापते! त्वत् अन्यः एतानि विश्वा जातानि ता न परिबभूव। यत् कामाः ते जुहुमः तत् नः अस्तु। वयम् रयीणाम् पतयः स्याम।

शब्दार्थ – विश्वा जाति– सम्पूर्ण उत्पन्न हुए पदार्थो का। परिबभूत – व्याप्त किए हुए है। यत्कामाः – जिस फल की कामना करते हुए। जुहुमः – आहुति देते है। नः – हमें। अस्तु– होवे। रयीणाम्– धनों के। पतयः – स्वामी। स्याम – हो जाएँ।

संदर्भ – प्रस्तुत प्रजापति–सूक्त का अन्तिम मंत्र है। इसमें हिरण्यगर्भ ऋषि ने प्रजापति देव से समृद्ध

बनाने तथा कृपा दृष्टि रखने हेतु प्रार्थना की है–

अनुवाद– हे प्रजापति! आपके अतिरिक्त कोई दूसरा इन वर्तमान सभी उत्पन्न पदार्थो को व्याप्त नहीं कर सकता है। हम जिस कामना से युक्त होकर तुम्हें हवि प्रदान करते हैं, हमारी वह कामना पूर्ण हो तथा हम लोग धनों के स्वामी हो जायें।

टिप्पणी–

(i) विश्वा ता – ये वैदिक रूप है। लोक में 'विश्वानि' तथा 'तानि' रूप बनते है।

(ii) जातानि – जन् धातु + क्त प्रत्यय, नपुंसकलिंग, द्वितीया विभक्ति बहुवचन।

(iii) जुहुमः – हु धातु लट् लकार उत्तम पुरुष बहुवचन।

(iv) स्याम– अस् धातु विधि लिंग उत्तम पुरुष बहुवचन।

(v) वयं स्याम पतयो रयीणाम् – वेद में इस प्रकार की प्रार्थना अनेक स्थानों पर की गई है। वैदिक ऋषियों की यह कामना थी कि सभी लोक दीर्घायु, धनवान एवं पुत्रवान् होवें।

1.6 संज्ञान–सूक्त (10.191)

संसमिद्यु वसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।

इल स्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर।। 1।।

अन्वय – वृषन् अग्ने, अर्यः (त्वम्) विश्वानि इत् संसम् आयुवसे। (त्वम्) इलः पदेः समिध्यसे। सः (त्वम्) न वसूनि आभर।

शब्दार्थ – वृषन्– कामनाओं के वर्षक। अर्यः – प्रभु। इत्– ही। संसम्– अच्छी तरह से। आयुवसे– संयुक्त करते हो, मिलाते रहते हो। इलः – पृथिवी के। समिध्यसे– प्रदीप्त किए जाते हो। आभर– प्रदान करो।

संदर्भ – प्रस्तुत मंत्र ऋग्वेद के दशम मण्डल के 191 वें सूक्त 'संज्ञान–सूक्त' से उद्धृत है। इसके ऋषि संवनन, देवता संज्ञान तथा इस मंत्र में छन्द अनुष्टुप् है। इस मंत्र में अग्नि देव की स्तुति की गई है तथा उससे प्रार्थना की गई है कि वह सभी स्तोताओं को धन प्रदान कर अनुगृहीत करें।

अनुवाद– ऋषि संवनन प्रार्थना करते हैं कि हे कामनाओं के वर्षक अग्निदेव! आप सब प्राणियों के स्वामी तथा सब को सम्यक् प्रकारेण मिलाने वाले हो। आप इस पृथ्वी के स्थान अर्थात् यज्ञीय–वेदी पर प्रज्वलित किये जाते हो। वह आप हमें धन प्रदान करो।

टिप्पणी–

(i) संज्ञान सूक्त के इस प्रथम मंत्र में अग्निदेव की स्तुति की गई है। वस्तुतः ऋग्वेदीय देवताओं में अग्नि का महत्त्वपूर्ण स्थान था तथा वह अपने स्तोताओं की कामना–पूर्ति भी करता था। मंत्र में प्रयुक्त 'वृषन्' सम्बोधन अपने आप में सार्थक तथा महत्त्वपूर्ण है।

(ii) वृषन् – वृष् धातु + कनिन् प्रत्यय, पुल्लिंग, सम्बोधन एकवचन।

(iii) समिध्यसे – सम + इन्ध् धातु, कर्मवाच्य लट् लकार, मध्यम पुरुष एकवचन।

(iv) युवसे – यु धातु + लट् लकार, मध्यम पुरुष एकवचन, आत्मनेपद।

(v) आभर – आ + भृ धातु + लोट् लकार + मध्यम पुरुष, एकवचन।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।

देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते।। 2।।

अन्वय – संगच्छध्वम्, संवदध्वम्, वः मनांसि सं जानताम् यथा पूर्वे संजानानाः देवा भागं उपासते।